सप्तम् अध्याय : उपसंहार

प्रस्तुत शोध ग्रंथ में 'रसखान के काव्य में प्रेम का स्वरूप' का अध्ययन है। रसखान प्रेम के कवि हैं। प्रेम शब्द सुनने में जितना सरल है व्याख्या में उतना ही विराट् है। समस्त जगत् को बॉधने वाला तंतु प्रेम ही है। समस्त जगत् की सर्जनात्मक शक्ति प्रेम में निहित है। समाज यदि सम्बन्धों का जाल है तो प्रेम उस सम्बन्ध का उत्पादक है। यही ढाई आखर है जिसके पढ़ने से सामान्यजन भी पंडित बन जाता है। मानव जीवन विकास की स्वर्णिम आभा प्रेम से प्रस्फुटित होती है। पुष्पदन्त ने ईश्वर से प्रार्थना करते हुए कहा था यदि समस्त पर्वतों की स्याही बना दी जाय और समुद्र की दवात बना दी जाय तथा धरती को कागज बना दिया जाय लेखन कार्य सरस्वती को दे दिया जाय वह कल्प वृक्ष की कलम से अनन्त काल तक लिखती रहें, तब भी प्रभु के गुणों का वर्णन नहीं हो सकता। रसखान ने प्रेम को ही प्रभु कहा है, अतः प्रेम की विवेचना नहीं की जा सकती। प्रेम के स्वरूप की ओर केवल संकेत भर किया जा सकता है। सच्चे प्रेम में सुख–दुःख का अद्वैत रहता है–प्रेमी सुखी होता है तो प्रिय भी सुखी होता है। यदि प्रेमी दुःखी होता है तो प्रिय भी दुःखी होता है। प्रिय हृदय को वहां प्रत्येक अवस्था में विश्राम मिलता है। वृद्धावस्था आने पर भी उसमें रस की कमी नहीं रहती। यौवन का नीर घटने पर भी प्रेम का कमल नहीं मुरझाता।

तत्वतः प्रेम की चर्चा करते ही हमारा विचार समाज की ओर उन्मुख हो जाता है। समाज का अध्ययन ही व्यक्ति के अध्ययन में सहायक होता है। समाज और साहित्य का अति गहरा सम्बन्ध है। समाज का अध्ययन हम अनेक दृष्टियों से करते हैं उसमें साहित्यिक दृष्टि से किया गया अध्ययन विशेष महत्वपूर्ण है। साहित्य ही मानव के विकास की विधाता है। साहित्य के दो महत्वपूर्ण पहलू हैं, समाज और संस्कृति।

समाज के स्वरूप को संस्कृति व्याख्यायित करती है। अतः सर्वप्रथम यहां संस्कृति पर प्रकाश डाला गया है। संस्कृति का स्वरूप व्यापक है। संस्कृति के अन्तर्गत, धर्म, दर्शन, परम्परा, कला, साहित्य सभी समाहित हैं। चूंकि रसखान का काव्य माधुर्य भक्ति का काव्य है अतः धर्म से जुड़ जाता है तथा इस प्रकार के काव्य के लिए संस्कृति का निर्देशन आवश्यक है। यही

कारण है कि शोध का प्रारम्भ संस्कृति के स्वरूप विवेचना से प्रारम्भ किया गया है। संस्कृति के स्वरूप विवेचन अर्थ एवं परिभाषा के साथ ही संस्कृति को व्यक्तित्व में दर्शाया गया है। हमारा व्यक्तित्व बाहरी एवं आन्तरिक परिवेश में विकसित होता है। इस विषय में यह व्याख्यायित करने का प्रयास किया गया है कि हमारे संस्कारों (विविध प्रकारके परिष्कारों के साथ) से व्यक्तित्व परिमार्जित होता है इसमें दर्शन एवं मनोविज्ञान की सहायता ली गई है ये मनोवैज्ञानिक आधार पर भी पुष्ट है इसे विविध संवृत्त वृत्तों के माध्यम से दर्शाया गया है। तत्पश्चात् परम्परागत सांस्कृतिक स्वरूप के विकास को दिखाया गया है। भारत में आर्यों के आगमन के पश्चात् आर्य संस्कृति तथा द्रविड. संस्कृत का मेल हुआ था इसके पश्चात् जो संस्कृतियां यहां आयी सभी इसमें सम्मिलित होती गयी। इस महान् संस्कृति को इस प्रकार दिखाया जा सकता है भारतीय संस्कृति = आर्यों का ज्ञान +द्रविड़ों कला + आधुनिक विज्ञान, ऐसा संकेत आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कालिदास की लालित्य योजना में दिखाया है वास्तव में इसमें अन्य संस्कृति का योगदान है वस्तुतः भारतीय संस्कृति समन्वयशील है, यह किसी एक जाति की संस्कृति नहीं है।

द्वितीय अध्याय 'मध्यकालीन संस्कृति परम्परा और काव्य' मध्यकालीन संस्कृति को रेखांकित करते हुए यह बताने का प्रयास किया गया है कि सांस्कृतिक चेतना की सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति सार्वभौम सत्य के आधार पर प्रतिष्ठित धार्मिक भावना और दार्शनिक चिन्तन धारा के माध्यम से हुई है। कला, शिल्प, साहित्य और संगीत इन्हीं की आनुषंगिक उपलब्धियां हैं। इन सबका क्षेत्र विशाल मानव समाज है, जिसकी प्रेरणा और प्रसाद से मनुष्य जीवन–यापन करता है। भारतीय जीवन में समय–समय पर विदेशी विजातीय तत्व के आते रहने के कारण परस्पर संघात होते रहे हैं। परन्तु इन्हीं से होकर ऐसी जीवनी शक्ति का संचार भी होता रहा है कि हम डूबते–डूबते भी उबरते चले आये हैं, निष्प्रभ या निस्तेज न होकर नव–जीवन की अरूणिमा से महिमा मंडित होते रहे हैं। इन सबके मूल में हमारी समन्वय साधना की प्रवृत्ति उजागर रही है, जो ब्राह्मण युग से ही उत्तर भारत में व्यक्त हो चुकी थीं। दक्षिण भारत में यह प्रवृत्ति बाद में उभरी। वैदिक देवी–देवताओं के वाह्य विधानों से विदक कर श्रमण संस्कृति के उन्नायकों ने जीवन का नया पथ खोज निकालने का यत्न आरम्भ किया, परन्तु गुप्त साम्राज्य की स्थापना के

अनन्तर दोनों ही क्षयमान हो गये मौर्य साम्राज्य के बिखराव के पश्चात् ब्राह्मणवाद का नये ओज और तेज के साथ अभ्युत्थान हुआ इस नवब्राह्मणवाद में श्रमण, द्रविड़ तथा अन्य आदि वासियों के मत और मान्यताएं परस्पर एकीभूत हो गयीं। मध्यकालीन हिन्दू जीवन प्रणाली पर उनका गहरा प्रभाव पड़ा। पुराणकारों ने समन्वय साधना की प्रवृत्ति को पुर्नजाग्रत किया। मूर्तिपूजा, तीर्थाटन, अवतारवाद, गौब्राह्मण रक्षा, धर्मशास्त्रों का सम्मान, काफिल में विश्वास पौराणिक धर्म के आयाम बन गये। मध्यकालीन हिन्दू समाज के दो पक्ष हमारे सामने आते हैं–एक वह जो शास्त्र का समर्थक है और दूसरा वह जो परम्परागत विश्वासों तथा मान्यताओं अथवा स्वानुभूति का पक्षधर है। यह दूसरा पक्ष ही पौराणिक पक्ष है। मध्यकालीन धर्म साधना में प्रायः सभी पूर्ववर्ती प्रमुख धर्म साधनाएं विद्यमान हैं। मध्यकाल में विविध धर्ममतों के होते हुए भी दो की प्रधानता उल्लेखनीय है वे हैं–शैवधर्म और वैष्णव धर्म। शैवधर्म के अन्तर्गत मध्यकाल में पाशुपात, वीरशैव, लिंगायत और कश्मीरी शैव सम्प्रदाय विख्यात थे और इनके उपसम्प्रदायों तक का गठन होने लगा था। शिव योग साधना के प्रवर्तक तथा आदि गुरू माने जाते हैं। ऐसे उपसम्प्रदायों में 'नाथ योगी सम्प्रदाय' की गणना भी की जाती है। इन सम्प्रदायों ने अपने मत के प्रकाशन के लिए क्षेत्रीय भाषाओं को अपनाया।

वैष्णव धर्म मूलतः भक्ति प्रधान है जो योग–साधना परवर्ती होने के कारण किंचित प्रभावित भी है। पांच–रात्र में तंत्र साधना के तत्व भी विद्यमान है। पांच–रात्र मत पर ही मूर्ति विधान और मन्दिर निर्माण की व्याख्या मुख्यतः आधारित थी। वैष्णव धर्म–सम्प्रदायों और उपसम्प्रदायों की सृष्टि प्रधानतः इनके आचार्यों अथवा प्रवर्तकों द्वारा दार्शनिक सिद्धान्तों की व्याख्या करने के कारण हुई थी। द्वैत, द्वैताद्वैत, विशिष्टा द्वैत, भेदाभेद आदि इन्हीं के परिणाम थे। इन्हीं के द्वारा अपनायी गयी भक्ति किसी न किसी दर्शन पर आधारित थी, फलतः ये स्वयं को एक–दूसरे से पृथक मानने लगे। संस्कृति के मूल तत्व धर्म में समाहित होते हैं अतः धर्म को आधार बनाकर उसकी अभिव्यक्ति से साहित्यिक परम्परा का जन्म होता है। वैष्णवधर्म दो प्रकार की साहित्य धाराओं में विभक्त हो जाता है–राम भक्तिधारा तथा कृष्ण भक्ति धारा। रामभक्ति धारा प्रवाह महाकवि तुलसी आदि से प्रस्रवित होता है तथा कृष्णभक्ति धारा सूरदास तथा अष्टछाप के कवियों से विस्तारित होता है। बल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग के अनुसरण करने वाले आठ कवियों में

से चार वल्लभाचार्य के शिष्य थे– कुम्भनदास, सूरदास, परमानंददास और कृष्णदास चार गोस्वामी विट्ठलनाथ के शिष्य थे, गोविन्द, नन्ददास, छीतस्वामी और चतुर्भुज दास। माधुर्य भाव की उपासना अष्टछाप के कवियों के अतिरिक्त चैतन्य देव एवं विद्यापति के काव्य में भी विद्यमान है। रसखान तथा मीराबाई ऐसे कवि हैं जो माधुर्य भाव के उपासक होते हुए भी सीधे किसी परम्परा से नहीं जुड़ते हैं किन्तु वे माधुर्य भाव के ही कवि हैं वस्तुतः इस अध्याय में संस्कृति तथा काव्य परम्परा का अध्ययन मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, संस्कृति समन्वय की विराट चेष्टा, मध्यकालीन संस्कृति के मूलतत्व, शीर्षकों में बॉटकर किया गया है, जिसका विवेचन ऊपर किया गया है मध्यकालीन संस्कृति के मूलतत्व के रूप में भक्ति भावना है जो अष्टछाप कवियों तथा रसखान के रूप में परम्परा तथा काव्य का रूप ले लेती है।

तृतीय अध्याय में 'रसखान का रचनात्मक व्यक्तित्व' दर्शाया गया है। जहॉ तक रसखान के परिवेश का प्रश्न है उनकी रचना 'प्रेम वाटिका' से संकेत रूप में प्राप्त होता है–

देखि गदर हित साहबी, दिल्ली नगर मसान।
छिनहिं बादसा–वंश की, ठसक छोरि रसखान।।

दिल्ली नगर श्मशान बन गयी थी। यह स्थिति इब्राहिम खां और अहमद खां के परस्पर कलह के कारण हुई थी। रसखान ने अपने आंखों के सामने बादशाहत को बर्बाद होते देखा था, अतः उनका मन आध्यात्मिक दिशा की ओर मुड़ गया। यह कहा जाता है कि रसखान ने गोस्वामी विट्ठलनाथ जी से बल्लभ सम्प्रदाय से दीक्षा ली थी। भक्ति के प्रवाह में उन्होंने जो रचनाएं की हैं, उनमें प्रमुख हैं सुजान रसखान, प्रेम वाटिका, दानलीला। कवि ने सुजान रसखान में कृष्ण की प्रेम लीला का वर्णन किया है। माधुर्य पूर्ण भक्ति के प्रवाह में उनकी रचना उनके हृदय को प्रस्तुत करती है। जिस प्रभु को ज्ञानी, योगी, यती देवता ध्यान में नहीं पाते हैं वही प्रभु प्रेम के कारण गोपियों द्वारा दिये गये थोड़े मट्ठे पर नाचता है। रसखान कहते हैं कि प्रेम ही प्रभु है, जिस प्रकार सूर्य तथा उसके प्रकाश को अलग नहीं किया जा सकता उसी प्रकार प्रभु अलग नहीं हो सकते हैं। उनके प्रेम का सत्य इन्द्रियों के संवेदना से ऊपर उठ कर आत्मा का स्पर्श करता है।

चतुर्थ अध्याय में 'रसखान काव्य का काव्यशास्त्रीय मूल्यांकन है रसखान की प्रेमानुभूति ही संवेदना बन जाती है, रसखान रस के कवि हैं। वे सच्चे अर्थ में मरजीवा कवि हैं वे ऐसी बेखुदी के शिकार हो गये हैं कि वे रसखान भी नहीं रह पाते, वे सब कुछ भूल जाते हैं पर भूल नहीं भूलते जो उनसे एक बार हो गयी है, वह भूल यह हुई कि वे श्रीकृष्ण से प्यार कर बैठे। जिस प्रकार वह गोपी प्यार करने की भूल कर बैठी जो तीर्थ यात्रा की भटक गई थी। वास्तव में प्रेम श्रीकृष्ण का रूप है जो सबको छता है। कभी छूकर तपाता है कभी छूकर हर्षाता है। यह साक्षात् श्रीकृष्ण है। पर ऐसे अलग लगता है जैसे सूरज से धूप अलग लगती है। सूरज की सार्थकता है धूप होने में। रसखान का काव्य विरह का काव्य है उनके काव्य में विरह–वर्णन सहज, स्वाभाविक और मार्मिक है। यदा–कदा अतिशयोक्तिपूर्ण कथन भी है। वस्तुतः यह युग–युग से बिछुड़ी प्रीति दग्ध प्रणयाकुल आत्मा–रूप विरहिणी की व्यथा–कथा है यह व्यथा उनके पदों में हृदय के सम्पूर्ण आवेग से उच्छलित है। कवि आराध्य का जन्म–जन्म से दास है। यही कारण है कि कवि की रूपाशक्ति, प्रेमाशक्ति और तज्जन्य विरह की चरम परिणति उसके आत्म समर्पण में होती है। प्रभु अनन्य है और कवि उनका भक्त। जड़–जंगम किसी भी रूप या योनि में उसे आराध्य का सहवास, साहचर्य मिले, यही उसकी मनोकामना है।

रसखान के काव्य में वियोग श्रृंगार की कालिंदी प्रवाहित होती है। 'प्रेमवाटिका' में संयोग श्रृंगार की अभिनवता है। उनकी भावाभिव्यक्ति रर्साद्र है। रस पेशल चित्रण पाठक को आत्म विभोर कर देता है। रसखान स्वच्छन्द भावधारा के कवि हैं। उनकी कविता आत्मानुभूति का निरायास प्रतिफलन है। शास्त्रीय नियमों से अपरिचित रसखान ने अपने अनुभूति के लिए स्वानुकूल मार्ग बनाया है। उनके विशुद्ध प्रेम की अनुभूति प्रवण किन्तु अनावृत्ति अभिव्यक्ति 'सुजान रसखान' में हुई है प्रेम और रति कामना सूचक हाव–भाव, मुद्राओं और चेष्टाओं की तन्मयता पूर्ण, अकृत्रिम और सजीव अभिव्यक्ति ने उनके काव्य को अत्यन्त मर्मस्पर्शी बना दिया है।

रसखान की कविता की महत्वपूर्ण शिल्पगत विशेषता निरलंकृति है। अलंकारों का प्रयोग रसखान के काव्य में हुआ है, किन्तु अत्यल्प, प्रेम की दृढ़ता, अनन्यता, हृदय बोधक सरलता तथा अनुभूति और स्पन्दन की चरमावस्था में रसखान के पास अलंकार प्रयोग का उतना अवकाश ही नहीं रहा है। वैसे भी रसखान रस सिद्ध कवि हैं, शास्त्रज्ञ काव्य–शास्त्री नहीं फिर भी उनके

काव्य में यमक, श्लेष तथा उपमा रूपक, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास आदि के उदाहरण ढूंढ़े जा सकते हैं। संक्षेप में यह कहा जा सकता है उनके शब्द चयन और छंद विधान पर समकालीन रचना धर्मिता और सर्जनात्मक प्रवृत्तियों का गहरा प्रभाव पड़ा है। उनकी संवेदना का सांचा समकालीन रचनात्मक प्रवृत्तियां निर्मित करती हैं। रसखान के शिल्प संस्कार का उत्स भक्त कवियों की निष्ठा और सहज स्वाभाविक भाषा प्रवाह से संवलित है। भक्त कवियों की भांति दोहा, कवित्त और सवैया छन्द उन्हें प्रिय हैं।

पंचम अध्याय 'रसखान के काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन' का है भारतीय संस्कृति विविध संस्कृतियों का संगम है। संस्कृति का क्षेत्र बड़ा व्यापक है। रसखान के काव्य के कृष्ण भारतीय संस्कृति के दिव्य प्रतिमान है वैसे तो कृष्ण का नाम वेद में आता है किन्तु जिस कृष्ण को रसखान प्रभु के रूप में प्रस्तुत करते हैं वे कृष्ण महाभारत, गीता तथा मुख्यतया भागवत से सम्बद्ध है। इस अध्याय में सर्वप्रथम कृष्ण के स्वरूप का विवेचन है। पुराणों में कृष्ण का जो स्वरूप है वही मुख्य रूप से कवियों का उपजीव्य है। भारतीय इतिहास, सभ्यता और संस्कृति की दृष्टि से पुराणों का बड़ा महत्व है पुराणों में सांस्कृतिक इतिहास है इसलिए सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में कृष्ण को ढूंढ़ना सर्वथा उचित है यहां कृष्ण को विभिन्न पुराणों में ढूंढ़ने का प्रयास किया गया है उनमें मुख्यतया निम्नलिखित पुराण है।

पद्मपुराण, विष्णु पुराण, वायु पुराण, श्रीमद्भागवत पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, वामन पुराण, गरूण पुराण, हरिवंश पुराण। महाभारत में जो कृष्ण का स्वरूप विवृत हुआ है, उसमें वासुदेव का ही रूपान्तर दिखता है यहॉ कृष्ण ऐतिहासिक व्यक्ति है महाभारत काल में श्रीकृष्ण में ईश्वरत्व का आरोप हो चुका था तथा उनका सम्बन्ध वैदिक कालीन श्रीकृष्ण से स्थापित हो चुका था। महाभारतीय श्रीकृष्ण का सम्बन्ध मथुरा और द्वारका दोनों से था। कृष्णा–कथा में बाल लीलाओं का समावेश अवश्य ही आभीर जाति के कारण हुआ। जैसा ऊपर बताया गया है कि भागवत के कृष्ण ही कवियों के मुख्य रूप से उपजीव्य रहे हैं। महाभारत से पौराणिक युग तक का समन्वित रूप भागवत में है। भागवत् में कृष्ण के सभी रूप आ गये हैं। (1) अद्भुत असुर संहारक कृष्ण (2) बालकृष्ण गोपी बिहारी कृष्ण (3) राजनीतिज्ञ वेत्ता (4) कूटनीति विशारद श्रीकृष्ण (5) योगेश्वर कृष्ण (6) परम ब्रह्म स्वरूप श्रीकृष्ण, मुख्य रूप हम कृष्ण के तीन रूप देखते हैं, (1) महाभारत

के कृष्ण (2) गीता के कृष्ण तथा भागवत् के कृष्ण। भगवान का वीरत्व विधायक स्वरूप महाभारत में, परम ब्रह्म स्वरूप गीता में तथा रसिकेश्वर भागवत में है। भागवत में जो कृष्ण का स्वरूप वहीं से माधुर्य भक्ति प्रस्रवित होती है। भागवत के वालकृष्ण सब लीलाओं से पूर्ण है। वे गंभीरता के समुद्र होते हुए भी मुरली बजाते, नाचते गाते हंसते है। रसखान के कृष्ण ऐसे ही कृष्ण हैं। रसखान के काव्य में भारतीय संस्कृति का प्रकाशन सम्यक् रूप में हुआ है। पहली बात यह है कि कृष्ण की प्रेमलीला का वर्णन स्वयं सांस्कृतिक प्रकाश है। कृष्ण और राधा के जिस प्रेम का विवेचन रसखान करते हैं उस प्रेम का स्वरूप आध्यात्मिक है। रसखान ने प्रेम भक्ति के जिन उपादानों का प्रयोग किया है उनसे सांस्कृतिक तत्वों का बोध होता है यथा 'मानुष हौं तो वही रसखान वसौं ब्रज गोकुल गांव के ग्वारन, जो पशु हौं तो कहां वस मेरो चरौं नित नंद के धेनु मंझारन,' यहॉ ब्रज गोकुल, नंद, आदि शब्द ब्रज संस्कृति के हैं। उन्होंने जो होली आदि का वर्णन किया है उसमें सांस्कृतिक तत्व स्वयं प्रवाहित होते हैं। रसखान ने ब्रजवालाओं के क्रिया–कलापों, यथा दही बेचने जाना, आदि का जो वर्णन किया है सभी रीति परम्पराओं का जो वर्णन है वह संस्कृति का अंग है। सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि माधुर्य भक्ति का दर्शन भारतीय संस्कृति का महत्वपूर्ण दर्शन है। लीला तत्व के अन्तर्गत जो बातचीत होती है वह पूरी तरह भारतीय संस्कृति की प्रकाशिका है। राधाकृष्ण का प्रेम समस्त जगत् का प्रेम है। संस्कृति का प्रभाव संवेदना एवं शिल्प दोनों में विन्यस्त है। सवैया, कवित्त दोहा, मध्यकालीन कवियों के साधन रहे हैं। भारतीय संस्कृति के प्रकाशन में रसखान की अभिवृत्ति के साथ उनकी भक्ति भारतीय संस्कृति के रूप में है।

अन्त में सबसे महत्वपूर्ण तथ्य रसखान का प्रेम दर्शन है। प्रेम मनुष्य में मानवता का संस्कार भरता है। प्रेम के अध्ययन लिए संस्कृति का अध्ययन अनिवार्य है। रसखान का काव्य प्रेम का दर्शन है, जिसकी अभिव्यक्ति उनकी भक्ति भावना में हुई है।